International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 14-11-2018; Accepted: 18-12-2018
www.socialsciencejournal.in
Volume 5; Issue 1; January 2019; Page No. 46-49

श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह (पूर्व प्रधानमंत्री) : व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० इन्द्रजीत सिंह
अतिथि विद्वान (राजनीति विज्ञान), शासकीय महाविद्यालय, सरई, जिला सिंगरौली, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
विश्वनाथ प्रताप सिंह ने रियासत के राजुमार की तरह जन्म लिया। घटनावश दूसरी रियासत के राजा भी बने। राजनीति में पांच जमाने के लिए उन्हें बहुत अधिक संघर्ष भी नहीं करना पड़ा। विद्यार्थी जीवन से लेकर प्रधानमंत्री बनने तक राजनीति खुद उनके स्वागत में मखमली कालीन बिछाती रही। सक्रिय राजनीति से सन्यास लिया तो अपनी मर्जी और स्वास्थ्य संबंधी कारणों से लोकतंत्र के रास्ते राजनीति में आए तो उसकी गरिमा को कभी ठेस न आनेदी। सहजता, सचरित्रता, सदाचरण, ईमानदारी और अपने मौलिक दृष्टिकोण के बल पर हमेशा दूसरों के लिए नवीनतम मानक गढ़ते गए। उनके संपर्क में आने वालों को कभी नहीं लगा कि वे राजा हैं। उनके आसपास राजनीतिक अवसरवाद खूब फला–फूला, मगर उसको कभी आड़े नहीं आने दिया। कोई प्रलोभन उन्हें अपने सिद्धान्तों से डिगा नहीं पाया।

मूल शब्द : श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह, व्यक्तित्व, विश्लेषणात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना
राजा बहादुर राम गोपाल सिंह के पुत्र श्री बी.पी. सिंह का जन्म 25 जून 1931 को इलाहाबाद में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद एवं पूना विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की थी। 25 जून 1955 को श्रीमती सीता कुमारी से उनका विवाह हुआ एवं उनके दो बेटे हैं। विद्यान श्री वी.पी. सिंह इलाहाबाद के कोरॉव में स्थित गोपाल विद्यानलय इंटर कालेज के संस्थापक थे। वे 1947–48 में वाराणसी के उदय प्रताप कॉलेज में छात्र संघ के अध्यक्ष थे एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्र संघ के उपाध्यक्ष भी रहे। उन्होंने 1957 में भूदान आंदोलन में सक्रिस रूप से भाग लिया एवं इलाहाबाद जिले के पासना गाँव में सुस्थित खेत को दान में दिया था। वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, 1969 से 71 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कार्यकारी निकाय एवं उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे। वे 1971 से 74 तक संसद (लोकसभा) के सदस्य, अक्टूबर 1974 से नवंबर 1976 तक वाणिज्य उपमंत्री, नवंबर 1976 से मार्च 1977 तक वाणिज्य संघ राज्य मंत्री, 3 जनवरी से 26 जुलाई 1980 तक संसद (लोकसभा) के सदस्य रहे। वे 9 जून 1980 से 28 जून 1982 तक उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे। 21 नवम्बर 1980 से 14 जून 1981 तक उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य और 15 जून 1981 से 16 जुलाई 1983 तक उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे। 29 जनवरी 1983 से केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री रहे एवं 15 फरवरी 1983 से आपूर्ति विभाग का अतिरिक्त प्रभार संभाला। 16 जुलाई 1983 से संसद (राज्य सभा) के सदस्य रहे। 1 सितम्बर 1984 को उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गए और 31 दिसम्बर 1984 को केन्द्रीय वित्त मंत्री बने।

प्रधानमंत्री के पद पर
1989 का लोकसभा चुनाव पूर्ण हुआ। कांग्रेस को भारी क्षति उठानी पड़ी। उसे मात्र 197 सीटें ही प्राप्त हुई। विश्वनाथ प्रताप सिंह के राष्ट्रीय मोर्चा को 146 सीटें मिलीं। भाजपा और वामदलों ने राष्ट्रीय मोर्चे को समर्थन देने का इरादा जाहिर कर दिया। तब भाजपा के पास 86 सांसद थे और प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार बता रहे थे। उन्हें लगता था कि राजीव गांधी और कांग्रेस की पराजय उनके कारण ही संभव हुई है। लेकिन चन्द्रशेखर और देवीलाल भी प्रधानमंत्री पद की दौड़ में शरीक हो गए।[1] ऐसे में यह तय किया गया कि वी.पी. सिंह की प्रधानमंत्री पद पर ताजपोशी होगी और चौधरी देवीलाल को उपप्रधानमंत्री बनाया जाएगा। प्रधानमंत्री बनते ही उन्होंने सिखों के घाव पर मरहम रखने के लिए स्वर्ण मन्दिर की ओर दौड़ लगाई।

वी.पी. सिंह की राजनीतिक–सामाजिक जीवन मुख्य रूप से तीन हिस्सों में विभाजित है–

- पहला दौर एक जमींदार परिवार से निकल कर कांग्रेस की राजनीति में होना और मुख्यमंत्री तथा देश का वित्तमंत्री तथा रक्षा मंत्री बनना है, जबकि वित्त मंत्री और रक्षा मंत्री रहते हुए उन्होंने करप्शन और रक्षा सौदों में दलाली के खिलाफ अभियान चलाया, इसी दौर में वे कांग्रेस से दूर हो गए।
- उनके जीवन का दूसरा दौर प्रधानमंत्री के तौर पर रहा, जिस दौरान उनका सबसे प्रमुख और साथ ही सबसे विवादास्पद कदम मंडल कंमीशन को लागू करने की घोषणा करना था। प्रधानमंत्री रहने के दौरान उन्होंने बाबा साहेब को भारत रत्न देने से लेकर उनकी जयंती पर छुट्टी देने और ऑपरेशन ब्लू स्टार के लिए स्वर्ण मंदिर जाकर माफी मांगने जैसे कदम उठाए। इस दौरान वे रिलायंस कंपनी के साथ सीधे टकराव में आए और धीरूभाई अंबानी को लार्सन एंड टुबो पर नियंत्रण जमाने से रोक दिया। राममंदिर आन्दोलन के मुद्दे पर उन्होंने बीजेपी के सामने झुकने से मना कर दिया और इसी वजह से उनकी सरकार गिर गई।
- अपने जीवन के तीसरे अध्याय में वी.पी. सिंह संत की भूमिका में आ गए। वे कविताएं लिखने लगे और पेटिंग्स में हाथ अजमाया, लेकिन इस दौरान भी वे सामाजिक मुद्दों से जुडे रहे। दिल्ली में झुग्गियों को उजाड़ने की कोशिशों का उन्होंने सड़कों पर उतरकर विरोध किया और सांप्रदायिक हिंसा के खिलाफ खड़े रहे।

वी.पी. सिंह के समर्थकों और विरोधियों दोनों को उनके बारे में एक बात समझ लेने की जरूरत है, कि सक्रिय राजनीति से अलग होने तक वी.पी. सिंह सबसे पहले नेता थे और हर नेता की तरह उनका लक्ष्य भी सत्ता में और सत्ता के शिखर पर होना था। इसलिए मुख्यमंत्री से लेकर प्रधानमंत्री बनने तक और प्रधानमंत्री बने रहने के दौरान उनके कार्यों को अराजनीतिक नजरिए से नहीं देखा जा सकता।[1] सत्ता में बने रहने के लिए जो कुछ करना पड़ता है, चुनाव जीतने के लिए जो भी समीकरण बनाने पड़ते है, जो भी इंतजाम करना होता है, उनमें वी.पी. सिंह अलग रहे होंगे, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है।

आठवें प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह को हमारे बीचे से गए दस साल हो चले हैं, पर लगता है कि इस देश को अभी भी यह फैसला करना बाकी है कि वह उन्हें याद करे तो किस रूप में और भुलाना चाहे तो मंडल व कमंडल के उस हड़बोंग के पार कैसे जाये, जो उनके वक्त में अपने चरम पर पहुंचकर भी खत्म नहीं हुआ और उसके दिए नासूर आज भी गाहे–ब–गाहे हमारी आहों और कराहों के कारण बनते रहते हैं।

इसके दो कारण है– पहला यह कि विश्वनाथ प्रताप सिंह जैसी शख्सियतों से उनके देशों का हिसाब–किताब जल्दी निपटता नहीं हैं और दूसरा यह कि देश की राजनीतिक दुनिया में उनकी उपसिथति उनके समय में ही इतनी विवादास्पद हो चली थी कि उनकी अनुपस्थिति में भी उन्हें किसी खांचे में फिट करके अपनी सुविधाओं के लिहाज से अनुकूलित करना किसी के लिए भी संभव नहीं हो रहा।

वे देश के इकलौते ऐसे नेता थे जिसने लोकप्रियता के घोड़े की सवारी में चढ़ाव व उतार दोनों का लगभग एक जैसा मजा लिया।[2] कभी लोगों ने खुश होकर उनको 'राजा नहीं, फकीर' कहा तो कभी बात उन्हें 'रंक' और 'देश का कलंक' बताने की हद तक जा पहुंची।

फिर भी उनके निकट संतोष की बात यह थी कि यह विवादास्पदता कभी भी उनके कद को तराशकर छोटा नहीं कर पाई। तब भी नहीं, जब उन्होंने कहा था – तुम मुझे क्या खरीदोगे / मैं बिल्कुल मुफ्त हूँ और तब भी नहीं जब उन्होंने ऐलान किया था– मुफलिस से / अब चोर बन रहा हूँ मैं इस भरे बाजार से चुराऊं क्या यहाँ तो वही चीजें सजी हैं जिन्हें लुटाकर मैं मुफलिस हुआ हूँ।

वैसे भी ओशों ने गलत नहीं कहा था कि मानव चेतना का अब तक का सारा विकास विवादास्पद व्यक्तियों ने ही किया है। सुकरात, ईसा, बुद्ध और महावीर समेत दुनिया में कोई भी ऐसा प्रज्ञावान व्यक्ति नहीं हुआ, जो विवादास्पद न रहा हो।

बहरहाल, अनेक लोगों को आज भी याद है बोफोर्स तापों के बहुचर्चित सौदे में दलाली यानी भ्रष्टाचार के मामले को लोकर विश्वनाथ प्रताप सिंह ने, अपने 'राजा नहीं, फकीर' वाले दिनों में कैसे नैतिकता के एक से बढ़कर एक ऊँचे और नये मानदंड गढ़े। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के खिलाफ अपने अभियान को कांग्रेस विरोधी दक्षिण व वामपंक्षी दलों की असंभव एकता तक ले जाकर वे प्रधानमंत्री बने तो देशवासियों के नाम पहले संदेश में कहा था– आज मैं जन्नत लाने का वादा तो नहीं कर सकता, लेकिन आश्वस्त करता हूँ कि हमारे पास एक भी रोटी होगी तो उसमें सारे देशवासियों का न्यायोचित हक सुनिश्चित किया जायेगा और विकास के लाभों का न्यायोंचित वितरण होगा।

कई लोग भारत की राजनीति में सामाजिक न्याय के कई नए मुहावरे गढ़ने का श्रेय भी उन्हीं को देते हैं, लेकिन न्यायोचित वितरण यानी समता के रास्ते से सामाजिक न्याय के अपने इस सपने को वे मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करने तक ले गए तो जैसे कहर–सा बरपा हो गया।

आरोप लगाय जाने लगे कि उनको नायक बनाने वाले सत्तारूढ़ जनतादल में आंतरिक संघर्ष छिड़ा और 'ताऊ' यानी देवीलाल के बेहद मुखर विरोधीस्वर को दबाने के लिए आवश्यक हुआ तो उन्होंने इस आयोग के जिन्न को जानबूझकर बोतल से बाहर निकाला।

इससे क्षुब्ध नवयुवकों के एक वर्ग के आत्मदाह जैसे कदमों तक जा पहुंचने के बाद उनकी समर्थक भारतीय जनता पार्टी के कमंडल यानी राममंदिर के मुद्दे को आगे कर ऐसी उथल–पुथल मचाई कि बोफोर्स का मुद्दा कहीं पीछे छूट गया।

फिर तो सांप्रदायिकता व धर्मनिरपेक्षता की फ्रीस्टाइल कुश्ती में उनकी सरकार पर ऐसी आ बनी कि उनका प्रधानमंत्रित्व अपनी वर्षगाठ तक नही मना सका।[3] लेकिन उस दौरान जिस एक चीज ने विश्वनाथ प्रताप सिंह को विश्वनाथ प्रताप सिंह बनाया, वह था उनका यह दो टूक बयान कि भले ही गोल करने में मेरी टांग टूट गई, लेकिन गोल तो होकर ही रहा, हाँ, एक बार कदम आगे बढ़ा देने के बाद उन्होंने पीछे मुड़कर देखना गवारा नहीं किया न ही मंडल आयोग की सिफारिशों के बारे में और न ही अयोध्या के मंदिर–मस्जिद विवाद के संदर्भ में।

कभी उनकी ईमानदारी के पीछे पागल रहने वाले इस वर्ग को बाद में फूटी आंखों भी नहीं सुहाते थे। इस 'बदलाव' को कुछ इस तरह समझा जा सकता है कि मध्य वर्ग के सम्मोहन वाले दिनों में वे बोफोर्स तोप दलाली के मुद्दे पर मंत्री पद को ठुकरा दिये तो इस वर्ग में एक क्षणिका बहुत लोकप्रिय थी। ईमानदारी का स्वाद कैसा अनुभव करते हैं आप? इसे तो बता सकते हैं केवल विश्वनाथ प्रताप सिंह!

लेकिन बाद में 'राजा नहीं, रंक' वाले दिनों में इसका स्थान अखबारों में छपने वाली इस तरह की हेडिंगों ने ले लिया आंधी से उभरा एक नाम जो गर्द में समा गया। चूंकि वे 'देश का कलंक' बन गये थे, इसलिए उनके प्रति घोर अनादर जताने वाली शाब्दिक 'प्रतिहिंसा' उनके इस संसार को छोड़ जाने के बाद भी अरसे तक जारी रही। कई महानुभावों द्वारा उन्हें बेहद महत्वाकांक्षी व कुटिल राजनेता तक बताया जाता रहा।

90 के दशक में पटना के गांधी मैदान की सद्भावना रैली में देश के सभी बड़े नेताओं की मौजूदगी में बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद जनसैलाब के बीच वी.पी. सिंह का अभिनंदन कर रहे थे। राजा नहीं फकीर है, भारत की तकदीर है।

7 अगस्त 1990 को मंडल कमीशन लागू करने की घोषणा वीपी सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने की थी। शरद यादव, रामविलास पासवान, अजीत सिंह, जार्ज फर्णांडिस, मधु दंडवते, सुबोधकांत सहाय आदि की सदन के अंदर धारदार बहसों व सड़क पर लालू प्रसाद जैसे नेताओं के संघर्षों की परिणति वी.पी. सिंह द्वारा पिछड़ोत्थान के लिए ऐतिहासिक, साहसिक व अविस्मरणी फैसले के रूप में हुई। कहाँ तक पहुंचा आरक्षण का सफर, एक नजर[4]।

392 पृष्ठ की मंडल कमीशन की रिपोर्ट देश को सामाजिक–आर्थिक विषमता से निबटने का एक तरह से मुकम्मल दर्शन देती है जिसे बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री व सांसद वी.पी. मंडल ने अपने साथियों के साथ बड़ी लगन से तैयार किया था। 20 दिसंबर 1978 को प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने अनुच्छेद 340 के तहत नए पिछड़ा वर्ग आयोग के गठन की घोषणा सदन में की। आयोग की विज्ञप्ति 1 जनवरी, 1979 को जारी की गई। जिसकी रिपोर्ट आयोग ने 31 दिसंबर 1980 को दी। राष्ट्रपति ने अनुमोदित किया। 30 अप्रैल 1982 में इसे सदन के पटल पर रखा गया, जो 10 वर्ष तक फिर ठंडे बस्ते में रहा।

वी.पी. सिंह की सरकार ने 7 अगस्त 1990 को सरकारी नौकरियों में पिछड़ों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण लागू करने की घोषणा की। बाद में जब मामला कोर्ट में अटका, तो लालू प्रसाद ने सबसे आगे बढ़ कर इस लड़ाई को थामा। रामजेठमलानी जैसे तेजतर्रार वकील को न्यायालय में मजबूती से मंउल का पक्ष रखने के लिए मनाया और लड़ाई को अंजाम तक पहुंचाया। 16 नवम्बर 1992 को इंदिरा साहनी मामले में उच्चतम न्यायालय ने क्रीमी लेयर की बाधा के साथ आरक्षण लागू करने का निर्णय सुनाया। साथ ही तत्कालीन सरकार द्वारा आर्थिक रूप से विपन्न अगड़ी जातियों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण के नोटिफिकेशन को सिर से खारिज किया और कहा कि पिछड़ेपन का पैमाना महज आर्थिक नहीं हो सकता। इस मामले में सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन सर्वप्रमुख क्राइटेरिया है। फैसले में यह भी कहा गया कि एससी, उसटी, और ओबीसी आरक्षण की सीमा 50 फीसदी के पार नहीं जानी चाहिए।

वर्षों धूल फांकने के बाद मंडल कमीशन की रिपोर्ट पर सामाजिक न्यायपसंद नेताओं द्वारा सदन के अंदर लगातार धारदार बहस और सड़क पर लालू जैसे अदम्य उत्साही लड़ाकुओं के सतत संघर्ष के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री व पिछड़ों के उन्नायक श्री वी.पी. सिंह ने अपनी जातीय सीमा खारिज करते हुए, बुद्ध की परम्परा का

निर्वहन करते हुए इस देश के अंदर लगातार बढ़ती जा रही विषमता की खाई को पाटने हेतु कमीशन की रपट को लागू करने का साहसिक, ऐतिहासिक व सराहनीय कदम उठाकर यह स्पष्ट संदेश दिया कि इच्छाशक्ति हो व नीयत में कोई खोट न हो, तो मिली–जुली सरकार की कुर्बानी की कीमत पर बड़े फैसले ले सकती है।

वी.पी. सिंह ने जिस मंत्रालय के जिम्मे कमीशन की सिफारिश को अंतिम रूप देने का काम सौंपा था, उसकी लेटलातीफी देखते हुए उन्होंने उसे रामविलास पासवान के श्रम व कल्याण मंत्रालय में डाल दिया। उस समय यह मंत्रालय काफी बड़ा हुआ करता था और अल्पसंख्यक मामले, आदिवासी मामले, सामाजिक न्याय व अधिकारिता, श्रम, कल्याण सहित आज के छह मंत्रालयों को मिलाकर एक ही मंत्रालय होता था। श्री पासवान की स्वीकारोक्ति है कि तत्कालीन सचिव पी.एस. कृष्णन, जो दक्षिण भारतीय ब्राहमण थे, ने इतने मनोयोग से प्रमुदित होकर काम किया कि दो महीने के अंदर मंडल कमीशन की सिफारिशों को अंतिम रूप दे दिया गया।

दुनिया में आरक्षण से बढ़कर ऐसी कोई कल्याणकारी व्यवस्था नहीं बनी, जितने इतने कम समय में अहिंसक क्रान्ति के जरिये समाज के इतने बड़े तबके को गौरवपूर्ण व गरिमापूर्ण जीवन जीने में इससे ज्यादा लाभ पहुंचायी हो। इतनी बड़ी जमात के लोगों के जीवन स्तर में काबिले–जिक्र तब्दीली आई हो। सरकार की कुर्बानी देकर आने वाली पीढ़ियों की परवाह करने वाले जननेता वी.पी. सिंह, शरद यादव, लालू यादव जैसी शख्सियतों के बारे में ही राजनीतिक चिंतक जे.एफ. क्लार्क कह गये – 'एक नेता अगले चुनाव के बारे में सोचता है, जबकि एक राजनेता अगली पीढ़ी के बारे में।'

वी.पी. सिंह ने साबित किया कि यदि दूरदृष्टि, सत्यनिष्ठाव इंटेग्रिटी हो, तो अल्पमत की गठबंधन सरकार भी समाजहित व देशहित में ऐतिहासिक व जरूरी फैसले ले सकती है। जो काम उनके पहले के प्रधानमंत्री अपने पांच साल के कार्यकाल में भी नहीं कर पाये, उसे उन्होंने साल भर के अंदर कर दिखाया। उस वक्त सत्ता व समानांतर सत्ता का सुख भोगने को आदीहो चुके जातिवादी नेताओं ने परिवर्तन की जनाकांक्षाओं को नकारते हुए उल्टे मंडल कमीशन को लागू कराने की मुहिम में जुटे नेताओं को जातिवादी कहना शुरू कर दिया। मंडल आंदोलन के समय पूर्व मुख्यमंत्री श्री जगन्नाथ मिश्रा ने कहा था – 'जिस तरह से देश की आजादी के पूर्व मुस्लिम लीग और जिन्ना ने साम्प्रदायिकता फैलाया उसी तरह वी.पी. सिंह ने जातिवाद फैलाया। दोनों समाज के लिए जानलेवा है।' वामपंथी दलों के एक धड़े ने इसे 'मंदिर–मंडल फ्रेंजी' कहकर मंडल और कमंडल दोनों को ही एक ही तराजू पर तोल दिया। भाकपा–माकपा ने इस लड़ाई को अपना नैतिक समर्थन दिया था, अपनी सामर्थ्य के मुताबिक ऊर्जा जोड़ी थी। तब तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव ने गरजते हुए कहा था – "चाहे जमीन आसमान में लटक जाए, चाहे आसमान जमीन पर गिर जाए, मगर मंडल कमीशन लागू होकर रहेगा इस पर कोई समझौता नहीं होगा।"

कपड़ा मंत्री शरदर यादव, श्रम व रोजगार मंत्री रामविलास पासवान, उद्योग मंत्री चौधरी अजीत सिंह, रेल मंत्री जार्ज फर्णांडिस, गृह राज्यमंत्री सुबोधकांत सहाय सबने एक सुर से जातिवादियों और कमंडलधारियों को निशाने पर लिया। रामविलास पासवान ने कहा – "वी.पी. सिंह ने इतिहास बदल दिया है। यह 90 प्रतिशत शोषितों और शेष 10 प्रतिशत लोगों के बीच की लड़ाई है। जगजीवन राम का खुशामदी दौर बीत चुका है और रामविलास पासवान का उग्र प्रतिरोधी जमाना सामने है।"

अजीत सिंह ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा – "सिर्फ चंद अखबार, कुछ राजनीतिक नेता और कुछ अंग्रेजीदा लोग मंडल कमीशन का विरोध कर रहे हैं जो कहते है कि मंडल मेरिट को फिनिश कर देगा। आपको मंडल की सिफारिशों के लिए कुर्बानी तक के लिए तैयार रहना चाहिए।" इस ऐतिहासिक सद्भावना रैली में वी.पी. सिंह ने कालजयी भाषण दिया था – "हमने तो आरक्षण लागू कर दिया। अब, वंचित–शोषित तबका तदबीर से अपनी तकदीर बदल डाले, या अपने भाग्य को कोसे।" उन्होंने कहा – बी.ए. और एम.ए. के पीछे भागने की बजाय युवाओं को गरीबों के दुःख–दर्द का अध्ययन करना चाहिए। लोकसभा और राज्यसभा की 40 फीसदी सीटें गरीबों के लिए आरक्षित कर देनी चाहिए। विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के पास जमा गैस और खाद एजेंसियों को गरीबों के बीच बांट देना चाहिए। आग वे ब्रेफ्रिक होकर कहते है कि मैं जानता हूँ कि मुझे प्रधानमंत्री के पद से हटाया जा सकता है, मेरी सरकार गिरायी जा सकती है। वे मुझे दिल्ली से हटा सकते हैं, मगर गरीबों के दरवाजे पर से नहीं।

जाहिर है कि पसमांदा समाज ने अपनी तकदीर खुद गढ़ना गवारा किया और नतीजे सामने हैं। हाँ, सामाजिक बराबरी व स्वीकार्यता के लिए अभी और लम्बी तथा दुश्वार राहें तय करनी हैं, बहुत से रास्ते हमवार करने हैं। पर अफसोस कि मंडल आयोग को सिर्फ आरक्षण तक महदूद कर दिया गया, जबकि वी.पी. सिंह मंडल ने भूमि सुधार को भी गैर बराबरी खत्म करने की दिशा में महत्वपूर्ण कारक माना था। स्वाधीनता के बाद भी संपत्ति का बंटवारा तो हुआ नहीं। जो गरीब, उपेक्षित, वंचित थे, वो आजादी के बाद भी गरीब और शोषित ही रहे। उनकी जिंदगी में कोई आमूलचूल बदलाव नहीं आया। अभी तो आरक्षण ठीक से लागू भी नहीं हुआ है, और इसे समाप्त करने की बात अभिजात्य वर्ग की तरफ से उठने लगी है।

निष्कर्ष

विश्वनाथ प्रताप सिंह के नाम से मशहूर सिंह 1980 और 1990 के दौर में विभिन्न कारणों से बार–बार राष्ट्रीय सुर्खियों में प्रमुखमता से बने रहे। राजीव गांधी सरकार में उन्होंने वित्त और रक्षा मंत्रालय के रूप में अपना रसूख बहुत बढ़ा लिया। वी.पी. सिंह बाद में राजीव गांधी के साथ मतभेद होने के पश्चात् कांग्रेस से अलग हो गए। इसी के साथ उन्होंने बोफोर्स तोप सौदे के मामले में देश में एक जबर्दस्त राजनीतिक तूफान पैदा कर दिया। असी अभियान के चलते मिली सफलता से उन्होंने 1989 के संसदीय चुनाव के बाद भाजपा और वामदलों के सहयोग से केन्द्र में सरकार बनाई। प्रधानमंत्री के रूप में श्री सिंह ने मंडल आयोग की सिफरिशें लागू करने का फैसला किया जो भारतीय राजनीति में 'निर्णायक मोड़' साबित हुआ। इसी दौरान आरक्षण विरोधी अभियान के बारे में उनके रुख के कारण वह समाज के एक वर्ग में अलोकप्रिय भी हुए।

विश्वनाथ प्रताप सिंह के लंबे राजनीति काल में कोई दाग नहीं मिलता। हालांकि बाद में उनके आंचल को दागदार करने की पूरी कोशिश कांग्रेस और दूसरे दलों ने की थी। वरिष्ठ पत्रकार कांचा इलैया ने विश्वनाथ प्रताप सिंह की तुलना अब्राहम लिंकन से की है, जो बिल्कुल सटीक है। गोरे अब्राहम लिंकन ने सदियों से रंगभेद के शिकार होते आए कोल लोगों के सम्मान और समानाधिकारके लिए संघर्ष किया था। उतनी ही पुरानी दास प्रथा को समाप्त कर उसके स्थान पर एक समतावादी समाज की स्थापना की थी। लिंकन की मौत गोरों के जातीय विद्वेष का परिणाम थी। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने भी शताब्दियों से जातीय उत्पीड़न का शिकार रहे। पिछड़े वर्ग के लोगों को समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया। उन्हें बदनाम करने, राजनीति से अपदस्थ करने में अगड़ों के कोई कोर–कसर न छोड़ी। विश्वनाथ प्रताप सिंह के प्रति अगड़ों का व्यवहार देखकर मुझे थॉमस मूर की याद आती है। सोलहवी शताब्दी के इस लेखक, विचारक और राजनयिक ने दुनिया को 'यूटोपिया' जैसा चमत्कारी शब्द दिया। जिसमें समानता–आधारित मानव समाज की झलक पहले पहल दिखाई पड़ी थी। सम्राट हेनरी अष्ठम का सर्वाधिक भरोसेमंद मूर दरबार में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर रह चुका था। अपनी पत्नी की दासी ऐलिजाबेथ बर्टन से विवाह

रचाने की जिद में जब हेनरी ने खुद को चर्च और उसके बनाए प्रत्येक कानून से ऊपर रखने कादावा किया तो मूर ने उसका विरोधा किया। साफ कहा कि किसी परिवार अथवा सत्ता के शिखर पर विराजमान होने मात्र से किसी व्यक्ति विशेषाधिकार नहीं मिल जाते। धरती के विशाल आंगन और अनंत आसमान के नीचे कोई भी विशिष्टि और खास नहीं है। मूर को फांसी की सजा हुई। उसको तड़फाते हुए मार डाला गया। सच का समर्थन करने के बदले कुछ ऐसी ही तड़फ विश्वनाथ प्रताप सिंह को भी आजीवन झेलनी पड़ी थी। सवर्ण मानसिकता से युक्त भारतीय मीडिया हमेशा उन पर प्रहार करता रहा। यहाँ तक कि उनकी मौत को गुमनाम बनाने में भी उसने कोई कोर–कसर न छोड़ी। प्रश्न उठता है कि अब जब विश्वनाथ प्रताप सिंह नहीं है तो उनके राजनीतिक सिद्धान्तों का क्या होगा? उस सामाजिक न्याय की भावना क्या होगा, जिसको वे आजीवन अभिसिंचित करते रहे। सांप्रदायिकता और जाति भेद के शिकार रहे दलित पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्गों की एकता का जो सपना उन्होंने देखा था, वह तो उनके जीवन में ही साकार नहीं हो पाय था। यहाँ तक कि दलितों और पिछड़ों में भी अलग–अलग खेमे बनते चले गए,जो आज भी बुरी तरह से बंटे हुए हैं।

सन्दर्भ

1. ओम प्रकाश कश्यप, विश्वनाथ प्रताप सिंह : सामाजिक न्याय का मसीहा, आखरमाला, 14 अप्रैल 2009।
2. सिंह, कृष्ण प्रताप – विश्वनाथ प्रताप सिंह : राजनीति में सामाजिक न्याय के कई नए मुहावरे गढ़ने वाला शख्स, प्रासंगिक, वायर, 25.6.2018।
3. भारतीय, संतोष – विश्वनाथ प्रताप सिंह के इस्तीफे की अर्न्तकथा, रविवार (साप्ताहिक) 11–17 जुलाई 1982।
4. जयन्तु जिज्ञासु, उपेक्षितों के उन्नायक वीपी सिंह : आरक्षण की दास्ता, हिन्दी सबरंग, 27 नवम्बर 2017।